8

सूर्यसूक्त और सञ्ज्ञानसूक्त

प्रस्तावना

वेदो में ज्ञान राशि और शब्द राशि हैं। वेद अपौरुषेय है यह ही परम्परा है। जीव मात्र की इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार के लिए अलौकिक उपायों को बताने वाला वेद है। वेद से ज्ञाप्यमान उपाय प्रत्यक्षत था अनुमान प्रमाण से अगम्य हैं। केवल वेद के शब्दों से ही वे उपाय जाने जा सकते हैं। ईश्वर ने भी सृष्टिकरण में वेद ज्ञान का आश्रय लेकर जगत् का सृजन किया। अतः यह वैदिक ज्ञान निर्भ्रान्त और प्रमाद रहित है। ऋक् यजुः साम तथा अथर्व भेद से चार प्रकार से वेद विभक्त है। स्तुत्यात्मक ऋग्वेद है। उस ऋग्वेद के मण्डल तथा अष्टक रूप से दो प्रकार से विभाजन किया गया है।

इस पाठ में सूर्यसूक्त तथा सञ्ज्ञानसूक्त दो सूक्त विद्यमान हैं। पहले सूर्यसूक्त उपस्थापित किया गया है।

मण्डल रूप से विभाग करने पर सूर्य सूक्त प्रथम मण्डल का एक सौ पन्द्रहवाँ सूक्त है (म 1, 1 15)

सूर्य सूक्त अतीव महत्त्वपूर्ण सूक्त है। द्युलोक में विद्यमान देवों में सर्वाधिक स्थूल देव सूर्य है जो भौतिक सूर्य के सदृश ही है। समग्र लोक का प्रकाशक सूर्य है। सूर्य देवता की स्तुति में भौतिक सूर्य से ही विशेष गुणों का वर्णन होता है। ऋग्वेद के दश सूक्तों में सूर्य की स्तुति का विधान है। यास्क के मतानुसार सूर्य शब्द धातू अथवा षु-धातू से निष्पन्न होता है। उनके मतानुसार सूर्य का इस प्रकार निर्वचन किया गया है - सरतेः वा सुवतेर्वा इति अर्थात् जो अन्तरिक्ष में गतिप्रदान करता है, लोगों को अपने कार्य के प्रति प्रेरित करता है। वह सूर्य कहलाता है। बृहद्देवताकार शौनक के मतानुसार जो प्राणियों के मध्य विचरता है। इस प्रकार सूर्य शब्द की निरुक्ति की गई है। इस सूर्य सूक्त के कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और सूर्य देवता हैं।

उद्देश्य

यह पाठ पढकर आप सक्षम होंगे-

- सूक्तों का माहात्म्य जानने में;
- सूक्तोक्त देवता का स्वरूप जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहिता पाठ जानने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का पदपाठ रचने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय करने में;
- सूक्तोक्त मन्त्रों की व्याख्या करने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक और वैदिक शब्दों के भेदों के ज्ञानवान् होंगे;
- वैदिक व्याकरण के अंशो को जान पाने में।

॥ सूर्यसूक्त ॥

8.1 मूल पाठ

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा
जगतस्तस्थुषश्च ॥1॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय
भद्रम्॥2॥

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति
सद्यः॥3॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्वितंतं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते
सिमस्मै॥4॥

टिप्पणी

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सुर्यो रूपं कृंणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशंदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भंरन्ति॥5॥

अद्या देंवा उदिंता सुर्यस्य निरंहंसः पिपृता निरंवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः॥6॥

8.1.1 मत्र व्याख्या (सूर्यसूक्त)

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावांपृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यः। आत्मा।
जगतस्तस्थुषश्चः॥1॥

पदपाठः - चित्रम्। देवानाम्। उत्। अगात्। अनीकम्। चक्षुः। मित्रस्य।
वरुण्स्य। अग्नेःआ। अप्राः। द्यावांपृथिवी इति। अन्तरिक्षम्।
सूर्यः। आत्मा। जगतः। तस्थुषः। च॥1॥

अन्वय- देवानां चित्रम् अनीकं मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षु उत् अगात्। द्यावापृथिवी अन्तरीक्षम् आ अप्राः, सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा॥

व्याख्या- देवों का। ''दीव्यन्तीति देवा रश्मयः''। अथवा देवजनों का। अनीक अर्थात् समूह रूप विचित्र आश्चर्य कर सूर्य मण्डल उद् अगात् अर्थात् उदयान्चल को प्राप्त था। कैसा? वायु जल और अग्नि का यह उपलक्षण है। उस उपलक्षित जगत का चक्षु अर्थात् प्रकाशक है अथवा चक्षु इन्द्रिय स्थानीय है और द्युलोक पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष को धारण करता है। अपने तेज से परिपूर्ण करता है। ऐसे भूत मण्डल का अन्तर्वर्ती सूर्य अन्तर्यामिता से सभी का प्रेरक परमात्मा इस अचल जगत तथा स्थावर का आत्मा स्वरूप है। वही सब स्थावर जगङ्गमात्मक कार्य वर्ग का कारण है और कारण से कार्य पृथक नहीं होता। और भी पारमर्ष सूत्र में कहा गया है- 'तदनन्यत्व मारम्भण शब्दादिभ्यः' (ब्र0सू0 2.1.14)॥ जो स्थावर जङ्गमात्मक सभी प्राणियों का जीवात्मा है। सूर्य के उदित होने पर मृत प्राय सभी जगत् पुनः चेतन युक्त हो जाता है और भी - 'योसौ तवन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति' (तै0आ0 1.14.1)॥

सरलार्थ- देवों के उज्ज्वल मुख तुल्य वायु जल तथा अग्नि का चक्षुरिन्द्रय तुल्य सूर्य ऊर्ध्व लोक जाता है। आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है। सूर्य स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों की आत्मा है।

व्याकरण

- उदगात् - उत्पूर्वक गा धातू का लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है।

- आप्राः – आ उपसर्ग पूर्वक प्र धातू के लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- जगतः – गम्-धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर जगत् रूप सिद्ध होता है। षष्ठी एकवचन में।
- तस्थुषः –स्था धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमाना मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय
भद्रम्॥2॥

पदपाठः – **सूर्यः। देवीम्। उषसम्। रोचमानाम्। मर्यः।न। योषाम्।**
अभि। एति। पश्चात्॥ यत्र। नरः। देवऽयन्तः। युगानि।
विऽतन्वते। प्रति। भद्राय। भद्रम्॥2॥

अन्वय– सूर्यः रोचमानां देवीम् उषसं पश्चात् मर्यः योषां न अभि एति। यत्र देवयन्तः नरः प्रति भक्ताय भक्तं युगानि वितन्वते।

व्याख्या– सूर्या देवी दानादि गुण से युक्त रोचमान दीप्यमान उषा को भय मुक्त करता है और उषा के प्रादुर्भाव के बाद उसको अभिलक्ष्य करके चलता है। वहाँ एक दृष्टान्त है। 'मर्यो न योषाम्' अर्थात् जैसे कोई मनुष्य सुन्दर जाती हुई युवति स्त्री के पिछे चलने लगता है वैसे ही सूर्य गुणमयी एवं प्रकाशमान उषा देवी के पीछे-पीछे चलते हैं। जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है, तब प्रकाश के देवता सूर्य की आराधना करने के लिए कर्म निष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म का सम्पादन करते है। सूर्य कल्याण रूप हैं और उनकी आराधाना से कर्तव्य कर्म के पालन से कल्याण की प्राप्ति होती है।

सरलार्थ– युवा पुरुष जैसे युवति के पीछे जाता है वैसे ही सूर्य दीप्तिमयी उषा देवी के पीछे चलते हैं। उस उषा के प्रकाश के समय यजमान कल्याण प्रददेवों के कल्याण फल के लाभ के लिए यज्ञ कर्म करते हैं।

व्याकरण –

- रोचमानाम् – रुच्-धातु से शानच् प्रत्यय और स्त्रीलिंग की विवक्षा में टाप् करने पर द्वितीया के एकवचन में यह रूप बनता है।
- मर्यः – मृङ्-धातु से यति प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवन में यह रूप है।
- युगानि – युज्-धातु से घञ् प्रत्यय करने पर द्वितीया बहुवचन का यह रूप बनता है।
- देवयन्तः – दिव्-धातु से क्यच् शतृ प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप बनता है।
- वितन्वते – विपूर्वक तनु के आत्मनेपद के लट् लकर के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

टिप्पणी

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति
सद्यः॥3॥

पदपाठः – **भद्राः। अश्वाः। हरितः। सूर्यस्य। चित्राः। एतऽग्वाः।**
अनुऽमाद्यासः॥ नमस्यन्तः। दिवः। आ। पृष्ठम्। अस्थुः। परि।
द्यावापृथिवी इति। यन्ति। सद्यः॥3॥

अन्वय– सूर्यस्य भद्राः हरितः अश्वाः चित्राः एतग्वाः अनुमाद्यासः नमस्यन्तः दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः। सद्यः द्यावापृथिवी परियन्ति॥3॥

व्याख्या– सूर्य का यह रश्मि मण्डल अश्व के समान उन्हें सर्वत्र पहुँचाने वाला चित्र विचित्र एवं कल्याण रूप है। यह प्रतिदिन तथा अपने पथ पर ही चलता है एवं अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सब को नमन की प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोक के ऊपर निवास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वी लोक का परिमंत्रण कर लेता है॥

सरलार्थ– सूर्य के कल्याणकारी हरित वर्णीय विचित्र गन्तव्य मार्ग में स्वयं ही गमनशील आनन्दकारी सबके स्तुत्य अश्वों ने द्युलोक को आरूढ कर रखा है। वे शीघ्र ही आकाश और पृथ्वी को चारों ओर से व्याप्त करेंगे।

व्याकरण –

- अश्वाः – अश्-धातु से क्वन् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- एतग्वाः – इण् गतौ धातु से तन् प्रत्यय में एत् बनने पर उससे एत् पूर्वक गम्-धातु से ड्व प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- अनुमाद्यासः – अनुपूर्वक मद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- अस्थुः – स्था धातु से लुङ् लकार में प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- यन्ति – इण् गतौ धातु से लट् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

815. सूर्यसूक्त के ऋषि, छन्द, और देवता कौन हैं?

816. चित्रम् का अर्थ बताओ?

817. आप्रा: यह रूप कैसे सिद्ध होता है?

818. तस्थुष: रूप कैसे सिद्ध होता है?

819. भद्रा: का क्या अर्थ है?

820. सूर्य के अश्व कैसे थे?

821. एतग्वारूप कैसे सिद्ध होता है?

822. अनुमाद्यास: रूप कैसे सिद्ध होता है?

823. देवयन्त: रूप कैसे सिद्ध होता है?

824. यन्ति यहाँ क्या धातु है?

8.1.2 मूलपाठ

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरित: सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते
सिमस्मै ॥4॥

पदपाठ: - **तत्। सूर्यस्य। देवऽत्वम। तत्। महिऽत्वम्। मध्या। कर्तो:।**
विऽततम्। सम्। जभार। यदा। इत्। अयुक्त। हरित:।
सधऽस्थात्। आत्। रात्री। वास:। तनुते। सिमस्मै॥4॥

अन्वय- तत् सूर्यस्य देवत्वं तत् महित्वं कर्तो: मध्या विततं सं जभार। यदा इत् हरित: सधस्थात् अयुक्त आत् रात्री सिमस्मै वास: तनुते॥4॥

व्याख्या- सूर्य सर्व प्रेरक आदित्य का वह देवत्व सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्य का यह ईश्वरत्व और महत्व है की वे प्रारम्भ किये हुए, किन्तु अपरि समाप्त कृत्यादि कर्मो को जैसे का तैसे छोड़कर अस्ताचल जाते समय अपनी किरणों को इस लोक से अपने आप में समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने किरणों और घोड़ों को एक स्थान से खींचकर दूसरे स्थान पर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अंधकार के आवरण से सबको आवृत्त कर देती है। इस विषय में निरुक्त में भी कहा गया है कि - 'तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्ये यत्कर्मणां क्रियमाणानां विततं संह्रियते यदासौ अयुक्त हरणानादित्यरश्मीन् हरितोश्वानिति वाथ रात्री वासस्तनुते सिमस्मै वासरमहरवयुवती सर्वस्मात् (निरु - 4.11)।

सरलार्थ- वही सूर्य का देवत्व है, वहीं सूर्य की महिमा है जो लोगों के द्वारा अनुष्ठित कर्मो में अपने प्रसारित किरण जाल को पृथिवी पर बिछाते हैं। जिससे वह सरस हरणशील अश्वों को रथ अथवा पृथ्वी के किरण जाल को पृथक् करता है तब रात्रि सब के लिए कृष्ण वस्त्र धारण करती है।

टिप्पणी

व्याकरण -

- विततम् - विपूर्वक तन्-धातु से क्त प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- संजभार - सम्पूर्वक भृ धातू से लिट् लकार प्रथम पुरुषैकवचन में यह रूप बनता है।
- अयुक्त - युज्-धातु के आत्मनेपद लुङ् लकार के प्रथम पुरुषैकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- सधास्थात् - सहपूर्वक स्थधातू से कप्रत्यय करने पर पञ्चमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तनुते - आत्मनेपदि तन्-धातु से लटलकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- सिमस्मै - सर्वनाम पर्याय वाचक सिम शब्द के चतुर्थी एकवचन का यह रूप है।
- रात्री - रात्रिशब्द का स्त्रीलिंग की विवक्षा में ङीप् के प्रथमा एकवचन का यह रूप है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सुर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भरन्ति ॥

पदपाठः - **तत्। मित्रस्य। वरुणस्य। अभिऽचक्षे। सूर्यः। रूपम्। कृणुते।**
द्योः। उपऽस्थे॥ अनन्तम्। अन्यत्। रुशत्। अस्य। पाजः।
कृष्णम। अन्यत्। हरितः। सम्। भरन्ति॥

अन्वय- तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे सूर्यः द्योः उपस्थे रुपं कृणुते। अस्य हरितः अनन्तम् अन्यत् रुशत् पाजः सं भरन्ति, अन्यत् कृष्णम्॥

व्याख्या- प्रेरक सूर्यप्रातः काल मित्र वरुण और समग्र सृष्टि को सामने से प्रकाशित करने के लिए प्राची के आकाशीय क्षितिज में अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं और इनकी रसभोगी रश्मियाँ अथवा हरे घोड़े बलशाली रात्रि कालीन अंधकार के निवारण में समर्थ विलक्षण तेज धारण अन्धकार की सृष्टि होती है।

सरलार्थ- मित्र और वरुण के दर्शन के लिए सूर्य द्युलोक के मध्य भाग में प्रकाश मान रूप को प्रकट करता है। उसके हरित वर्णीय अथवा रसहरणशील अश्व एक समय में ही प्रकाश और अन्धकार को लाते हैं।

व्याकरण

- अभिचक्षे - अभिपूर्वक चक्ष्-धातु से क्विप् प्रत्यय के वैदिक तुमर्थकैकार में यह रूप बनता है।

टिप्पणी

- द्यो: - द्योशब्द का षष्ठी एकवचन में यह वैदिकरूप सिद्ध होता है।
- उपस्थे - उप पूर्वक् स्था धातू से क प्रत्यय के सप्तमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- कृणुते - कृ धातु से लट लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- पाज: - पा धातु से असुन्प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- भरन्ति - भृ धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अद्या देवा:। उदिता सुर्यस्य निरंहस: पिपृष्ता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति: सिन्धु: पृथिवी उत
द्यौ:॥6॥

पदपाठ: - **अद्य। देवा:। उत्ऽइता। सूर्यस्य। नि:। अंहस:। पिपृत। नि:।**
अवद्यात्॥ तत्। न:। मित्र:। वरुण:। ममहन्ताम्। अदिति:।
सिन्धु:। पृथिवी। उत। द्यौ:॥6॥

अन्वय- देवा: अद्य सूर्यस्य उदिता अंहस: निष्पिपृत नि: अवद्यात्। न: तत् मित्र: वरुण: अदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौ: ममहन्ताम्॥

व्याख्या- हे प्रकाशमान सुर्य रश्मियों आज सूर्योदय के समय इधर उधर बिखरकर तुम लोग हमे पापों से निकाल कर बचा लो। न केवल पाप से ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, ग्रहणीय है, दु:ख दारिद्रय है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें॥

सरलार्थ- इस मन्त्र में देवों के प्रति कहा गया है कि हे देवों सूर्यरश्मियां आज सूर्य के उदित होने पर पापों से हमें मुक्ति दें, अपशब्द भाषण से भी मुक्ति दें। हमारी इस प्रार्थना का मित्रादि देवता अनुमोदन करे।

व्याकरण

- उदिता - उत्पूर्वक इण्-धातु से क्त प्रत्यय और डादेश करने पर वैदिक रूप उदिता बनता है।
- अद्या - 'निपातस्य च' इससे दीर्घ होता है।
- अवद्यात् - वद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर वद्य रूप। तथा न वद्य अवद्य, पञ्चमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पिपृत - पृ धातु से लट् मूलक लोट लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- ममहन्ताम् - मम्ह् अथवा मह् धातु से लिट् मूलक लोट् लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

825. सूर्य का दूसरा क्या नाम था?

826. सिम शब्द का अर्थ क्या है?

827. सिमस्मै में किस अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है?

828. सधास्थात् यहाँ किस अर्थ में कौन सा प्रत्यय है।

829. रात्री में कौन सा प्रत्यय है?

830. अयुक्त रूप कैसे सिद्ध होता है?

831. हरित: का क्या अर्थ है?

832. पाज: रूप कैसे सिद्ध होता है?

833. अद्या में किस सूत्र से दीर्घ होता है?

834. ममहन्ताम् रूप कैसे सिद्ध होता है?

8.2 सूर्य का स्वरूप

वेद में अनेक देवों में सूर्यदेव का विशिष्ट स्थान है। ऋग्वेद में सुवर्ण कान्ति तेज: स्वरूप सूर्य चराचर विश्व के आत्मत्व पूजित है। कृष्ण यजुर्वेद में आदित्य विश्व का प्राण स्वरूप है ऐसी व्याख्या है। अत: सूर्य से सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई। जैसे कि ''असौ वा आदित्य: प्राण: प्राणमेवैनानुत्सृजति''। ऋग्वेद में सूर्य श्रेष्ठ ज्योति के स्वरूप में स्तुत है। जैसे कि ''इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्'' (ऋग्वेद: 10/170/3)। निरुक्तकार के मत में सूर्य द्युलोकस्थ देवों का प्रतिनिधि है। ''सूर्यो द्युस्थान:'' (निरुक्त 7/5/2)। पुरुष सूक्त में सूर्य की उत्पत्ति विराट्-पुरुष की चक्षु से हुई ऐसा प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे की कहा गया है चक्षो: सूर्य: अजायत''। सूर्य देव अनीक अर्थात् देवों के मुख स्वरूप हैं। हमारा प्रत्यक्ष देव सूर्य है। उषा उसकी भार्या है। जैसे युवक युवती का अनुसरण करता है वैसे ही सूर्य दीप्तिमती उषा देवी के पीछे दोड़ता है। ऋग्वेद में बहुत सी जगह सूर्यदेव के रथ का वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य के रथ में सात अश्व हैं। सूर्य की रश्मियाँ ही यहाँ अश्व हैं। सूर्य के उदित होने पर उसकी रश्मियाँ अश्व की तरह ही बहुत वेग से सभी दिशाओं में विस्तरित होती हैं। अत: रश्मियों को अश्व कहा जाता है और ये रश्मियाँ पृथिवी के पृष्ठ भाग से जलीयांश का हरण करती हैं। अत: रसहरण शीलत्व के कारण हरित कही जाती है। एक दिन में ही ये द्युलोक और पृथिवी लोक की प्रदक्षिणा करती हैं ''परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्य:'' यह श्रुति है। सूर्य की रश्मियाँ अन्धकार को

दूर करने में समर्थ हैं। सूर्य की रश्मियाँ जब पृथ्वी लोक में आ जाती हैं तब पृथ्वी पर दिन होता है। किन्तु जब सूर्य अपने रश्मि रूपी अश्वों को पृथ्वीलोक से हटाता है तब पृथ्वी पर अन्धकार विस्तृत हो जाता है। उससे रात्रि उत्पन्न होती है। इस प्रकार सूर्य ही रात और दिन का कारण है।

सूर्य सभी प्राणियों का प्रेरक भी है। सूर्य के उदित होते ही सभी प्राणी अपने अपने कर्म में संलग्न हो जाते हैं और भी सूर्य उरुचक्षा है। अर्थात् वह मनुष्यों के सभी पाप पुण्य के कर्मों का अवलोकन करता है। ऋग्वेद में कहीं-कहीं सूर्य और अग्नि अभिन्नत्व रूप से प्रतिपादित हैं। दिन में जो सूर्य होता है वह ही रात्री में अग्नि होता है।

सूर्यदेव का यही माहात्म्य है कि वह स्वतन्त्र है। मनुष्यके प्रारम्भ किये हुए कृषि कर्म समाप्त न होने पर भी प्रातः से विस्तृत अपना रश्मिजाल अस्त होते समय अपने में ही समेट लेता है। तब पृथ्वी लोक को अंधकार आच्छादित कर लेता है। जगत् के प्रकाश के लिए रश्मिजाल का क्षणमात्र से प्रसारण और पुनः संहरण यह अल्प महिमा वाले के लिए सम्भव नहीं है, अतः सूर्यदेव का यह अत्यधिक माहात्म्य है।

8.3 सूर्य सूक्त का सार

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के इस सूर्य सूक्त के सूर्य देवता, कुत्स ऋषि, और त्रिष्टुप् छन्द है। इस सूक्त में ऋषि भगवान् सूर्य की स्तुति करते हुए कहते हैं कि, जगत के चक्षुरिन्द्रिय स्थानीय सूर्य उदय को प्राप्त करके द्युलोक पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से सम्पूर्ण पूरित कर दिया। ऐसा मण्डलान्तर्वर्ती सूर्य अन्तर्यामितया सबका प्रेरक परमात्मा ही है। वही स्थावर जंगमात्मक कार्य वर्ग का कारण है। सूर्य के उदित होने पर मृत प्राय सब जगत् पुनः चेतनयुक्त हो जाता है। सूर्य ही दानादि गुणों से युक्त दीप्यमान उषा को प्राप्त करता है। अर्थात् उषा प्रादुर्भावानान्तर उसको अभिलक्ष्य करके चलती है। जैसे कोई मनुष्य लावण्यमयी जाती हुई युवती के पीछे जाता है, उसी तरह इस प्रकार के सूर्य के प्रति भद्र कल्याण रूप और कर्मफलकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार हमारे द्वारा नमस्यमान सूर्य अन्तरिक्ष के पृष्ठभाग ऊपरिप्रदेश पूर्वभाग लक्षण को प्राप्त करता है अथवा, दुःख हरणशील सूर्य की रश्मियाँ भद्रादि लक्षण विशिष्ट दिन के पृष्ठ भाग नभःस्थल में रहती हैं। उदय के समय मित्र और वरुण का लक्षित सब जगत का सविता रूप सबका निरूपक और प्रकाशक तेज कर्ता है। और भी इस सूर्य की रस हरणशील रश्मियाँ हरे रंग के अश्व अथवा अनन्तर अवसान रहित सब जगत में व्यापक दीप्यमान श्वेत वर्ण बलयुक्त निशा के अंधकार के निवारण में समर्थ और अंधकार का विलक्षण तेज अपने आगमन से निष्पादित करता है। यह सब सूर्य का माहात्म्य है। हे सूर्य रश्मियाँ आज इस समय सूर्य के उदय के होने पर इधर-उधर प्रसारित तुम हमें अहंस पापों को पालती हैं।

टिप्पणी

चित्रं देवानामुदगाननीकं, चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ 1 ॥

प्रकाशमान रश्मियों का समूह, अथवा राशि देवगण सूर्य मण्डल के रूप में उदित हो रहे हैं। ये मित्र वरुण अग्नि और सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र है। इन्होंने उदित होकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने देदीप्यमान तेज से सर्वतः परिपूर्ण कर दिया है। इस मण्डल में जो सूर्य हैं, वे अन्तर्यामी होने के कारण सबके प्रेरक परमात्मा हैं तथा जंगम एवं स्थावर सृष्टि की आत्मा हैं।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां, मयो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्ति युगानि, वितन्वते प्रति भद्राय भद्राम्॥ 2॥

इस मन्त्र में ऋषि कुत्स ने कहा कि, सूर्य दानादिगुणयुक्त एवं दीप्यमान उषा के पीछे पीछे चलते है, जैसे कोई मनुष्य सर्वांग सुन्दरी युवती का अनुगमन करे। जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है, तब प्रकाश के देवता सूर्य की आराधना करने के लिए कर्मनिष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म का सम्पादन करते हैं। सूर्य कल्याण रूप हैं और उनकी आराधना से कर्तव्य कर्म के पालन से कल्याण की प्राप्ति होती हैं।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य, चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः, परिद्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥3॥

सूर्य का यह रश्मि मण्डल अश्व के समान उन्हें सर्वत्र पहुँचाने वाला चित्र विचित्र एवं कल्याण रूप है। यह प्रतिदिन तथा अपने पथ पर ही चलता है एवं अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सबको नमन की प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोक के ऊपर निास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वी लोक का परिमन्त्रण कर लेता है।

तत्सूर्यस्य देवस्य तन्माहित्वं, मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाक्त्रात्री वास्ततनुते सिमस्मै॥4॥

सूर्य सर्व प्रेरक आदित्य का वह देवत्व। सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्य का यह ईश्वरत्व और महत्व है की वे प्रारम्भ किये हुए, किन्तु अपरिसमाप्त कृत्यादि कर्मों को ज्यों का त्यों छोड़कर अस्तांचल जाते समय अपनी किरणों को इस लोक से अपने आप में समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने किरणों और घोड़ों को एक स्थान से खींचकर दूसरे स्थान पर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अंधकार के आवरण से सबको आवृत्त कर देती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे, सूर्योरूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यदुशदस्य पाजः, कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥5॥

प्रेरक सूर्यप्रातः काल मित्र-वरुण और समग्र सृष्टि को सामने से प्रकाशित करने के लिए प्राची के आकाशीय क्षितिज में अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं। और इनकी रस भोजी रश्मियाँ अथवा हरे घोड़े बलशाली रात्रिकालीन अंधकार के निवारण में समर्थ विलक्षण तेज धारण अन्धकार की सृष्टि होती है।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य, निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ॥ 6॥

हे प्रकाशमान सुर्य रश्मियों आज सूर्योदय के समय इधर उधर बिखरकर तुम लोग हमें पापों से निकालकर बचा लेना केवल पाप से ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, ग्रहणीय है, दु:ख दारिद्रय है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें।।

वरुण अनिष्ट निवारयिता रात्री का अभिमानी देव है, अदिति जल का अभिमानी देवता है, पृथ्वी भूलोक की अधिष्ठात्री देवता है, द्यौ द्युलोक का अभिमानी देव है।

पाठ का सार (सूर्यसूद्रांश में)

सूर्यसूक्त के आदि मन्त्र में सूर्य का स्वरूप वर्णित है। यह सूर्य कैसा है? यह प्रश्न मन में उदित होता है। उसका उत्तर प्रथम मन्त्र में ही दिया गया है। कहा जाता है कि सूर्य देवों के उज्ज्वल मुख के तुल्य है मित्र वरुण और अग्नि के चक्षु इन्द्रिय के तुल्य है। वह अपने आलोक समूह से समग्र जगत् में व्याप्त हो गया है। वह सभी स्थावर तथा जङ्गम की आत्मा है। द्वितीय मन्त्र में सूर्य का एक स्वभाव प्रकट किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जैसे कोई युवा पुरुष युवती के पीछे चलता है वैसे ही सूर्य भी दीप्तिमयी उषादेवी के पीछे चलता है। तृतीय मन्त्र में सूर्य के अश्वों के विषय में कहा गया है। वहाँ कहा जाता है कि उसके अश्व हरितवर्णीय, कल्याणकारी, विचित्र, गन्तव्य मार्ग में स्वयं ही गमनशील, और सबके द्वारा प्रणम्य हैं। चतुर्थ मन्त्र में सूर्य का देवत्व वर्णित है। लोगों के द्वारा अनुष्ठित कर्मों में अपने प्रसारित किरण जाल से पृथ्वी की रक्षा करता है। वह जब रस हरणशील अश्वों को अपने रथ से पृथक् करता है तब रात्रि आ जाती है। पंचम मन्त्र में उसके अश्वों की महिमा का वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि उसके रसहरण शील अश्व एक समय में ही प्रकाश और अन्धकार लाते हैं। तथा षष्ठ मन्त्र में सूर्य के प्रति प्रार्थना की गयी है कि हे देव! सूर्य उदित होने पर पापों का अपसारण करके हमारी रक्षा कर। अपशब्द युक्त वचनों से हमें पृथक् करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ये प्रार्थना स्वीकार करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सूर्य सूक्त में सूर्य के स्वरूप, सूर्य के अश्वों का स्वरूप, सूर्य का माहात्म्य ये विषय वर्णित हैं।

संज्ञान सूक्त

ऋग्वेद का संज्ञान सूक्त भी बहुत प्रसिद्ध है प्रकृत सूक्त के केवल इस प्रथम मन्त्र के अग्नि देवता हैं। और बचे हुये मन्त्रों के संज्ञान ही देवता हैं। इस सूक्त के संवनन अंङ्गिरस

टिप्पणी

हैं। ये सभी मन्त्र अनुष्टुप और त्रिष्टुप छन्द से ही सुशोभित हो रहे हैं। प्रकृत पाठ के उत्तरार्ध में इस संज्ञान सूक्त का वर्णन प्राप्त होता है।

8.4 संज्ञान सूक्तस्य सामान्य-परिचयः

संज्ञान सूक्त ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के अन्तर्गत आये सूक्तों में अन्यतम सूक्त है। इस संज्ञा नसूक्त में चार मन्त्र ही हैं। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में अग्नि देवता की स्तुति विहित है। यहाँ अग्निदेवता की स्तुति के अवसर पर अग्नि देवता को उद्देश्य करके यह कहा गया कि हे अग्निदेव! आप सभी उपासकों की यथेष्ट अभिलाषा को प्राप्त करवाते हैं। अतः हमारे लिए भी धनादि के रूप में अभिलषित पदार्थों को वैसे ही प्रदान करें।

इस सूक्त के अवशिष्ट तीन मन्त्रों में संज्ञान देवता की उपासना विहित हैं तथा सभी के साथ मिलकर संभाषण, विरोध को छोड़कर ऐक्य भाव से निवास, और परस्पर सौहार्द पूर्ण व्यवहार- इनके विधान की कामना की गयी है। जिस प्रकार प्राचीन काल में हमारे पूर्वज परस्पर सौहाद ंऔर सांमन्जस्य से व्यवहार करते थे, उसी प्रकार से ही परस्पर क्रियाकलाप की प्रार्थना भी की गयी है। ऋत्विज तथा यजमान की भी ऐक्यमत की कामना भी इस सूक्त में विहित है।

8.5 मूल पाठ (संज्ञानसूक्त)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥1॥

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥2॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥4॥

8.5.1 अब मूलपाठ को जानेंगे (सञ्ज्ञानसूक्त)

इस सूक्त के आङ्गिरा ऋषि, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द, अग्नि और संज्ञान देवता हैं।

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥1॥

पदपाठः - **सम्ऽसंम्। इत्। युवसे। वृषन्। अग्ने। विश्वानि। अर्यः।आ॥**
इळः। पदे। सम्। इध्यसे। सः। नः। वसूनि। आ। भर॥

अन्वय- वृषन् अग्ने, अर्यः विश्वानि आ संसम् इत् सम् युवसे इडस्पदे समिध्यसे सः नः वसूनि आ भर।

व्याख्या- हे वृषन् कामानाओं की वर्षित अग्नि ईश्वर समस्त सुखों को प्रदान करने वाले हे अग्नि। आप सब में व्यापक अन्तर्यामी ईश्वर हैं। आप यज्ञवेदी पर प्रदीप्त किये जाते हैं। हमें विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य को प्रदान करें।

सरलार्थ- हे अभिष्ट फलदायक अग्नि तू प्रभु रूप से सब को सभी दिशाओं से योजित करके बैठ, यज्ञवेदि के मध्य में सम्यक् रुप से प्रज्वलित होकर बैठ। वहीं तू, हमारे लिए धन का आहरण कर।

व्याकरण -

- युवसे- यु-धातु से लट् लकार आत्मनेपद मध्यम पुरुष एकवचन में युवसे रूप बनता है।
- समिध्यसे- सम्पूर्वक इन्ध-धातु से लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में समिध्य से यह रूप कर्म वाच्य का रूप है।
- भर- भृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में भर यह रूप सिद्ध होता है।

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥2॥

पदपाठः - **सम्। गच्छध्वम्। सम्। वदध्वम्। सम्। वः। मनांसि।**
जानताम्। देवाः। भागम्। यथा। पूर्वे। सम्ऽजानाघ्नाः।
उपऽआसते।

अन्वय- सं गच्छधवं सं वदधवं वः मनांसि सं जानताम। यथा पूर्वे देवाः सञ्जानानाः भागम् उपासते।।

व्याख्या- हे स्तोताओं हे धर्म निरत विद्वानों आप परस्पर एक होकर रहें, एक होकर चलें। परस्पर मिलकर प्रेम से वार्तालाप करें। एकमत होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार श्रेष्ठजन एकमत होकर ज्ञानार्जन करते हुए ईश्वर की उपासना करते हैं, उसी प्रकार आप भी एकमत होकर व विरोध त्यागकर अपना काम करें।

सरलार्थ- (हे स्तुतिकारी) (आप) साथ-साथ चले, साथ-साथ बोले, आपके मन समान हों। जैसे प्राचीनकाल के देवता साथ-साथ यज्ञभाग को ग्रहण करते थे उसी प्रकार तुम भी करो।

टिप्पणी

व्याकरण –

- गच्छध्वम्– गम्–धातु से लोट आत्मनेपद के मध्यम पुरुष बहुवचन में गच्छध्वम् रूप सिद्ध होता है।
- वदध्वम्– वद्–धातु से लोट् लकार आत्मनेपद मध्यमपुरुष बहुवचन में वदध्वम् रूप सिद्ध होता है।
- संजानताम्– सम्पूर्वक ज्ञा–धातु से लोट् लकार आत्मनेपद मध्यमपुरुष बहुवचन में संजानताम् रूप सिद्ध होता है।
- सञ्जानानाः– सम्पूर्वक ज्ञा–धातु से शानच्प्रत्यय के प्रथमा बहुवचन में सञ्जानानाः रूप सिद्ध होता है।
- उपासते– उपपूर्वक आस्–धातु से लट् लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुष बहुवचन में उपासते रूप बनता है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

पदपाठः – **समानः। मन्त्रः। सम्ऽइतिः। समानी। समानम्। मनः। सह। चित्तम्। एषाम्॥ समानम्। मन्त्रम्। अभि। मन्त्रये। वः। समानेन। वः। हविषा। जुहोमि॥**

अन्वय– एषां मन्त्रः समानः, समितिः समानी, मनः समानम्, चित्तं सह। वः समानं मन्त्रम् अभिमन्त्रये वः समानं हविषा जुहोमि।।3।।

व्याख्या– हम सबकी प्रार्थना एक समान हो, भेद भाव से रहित परस्पर मिलकर रहें, अंतःकरण मन चित विचार समान हों। मैं सबके हित के लिए समान मन्त्रों को अभिमंत्रित करके हवी प्रदान करता हूँ।

सरलार्थ– (स्तोताओं का) यह मनन समान हो, इनका मेल समान हो, हृदय के साथ मन भी समान हो। तुम्हारे लिए एक ही स्तुति उच्चारित हो। मैं तुम्हारे लिए एक ही हवि की आहुति देता हूँ।

व्याकरण

- **समितिः**– सम्पूर्वक इ–धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में समितिः रूप बनता है।
- **अभिमन्त्रये**– अभिपूर्वक मन्त्र–धातु से लट् लकार के आत्मनेपद के उत्तमपुरुष एकवचन में अभिमन्त्रये रूप सिद्ध होता है।
- **जुहोमि**– हूँ–धातु से लट्लकार उत्तमपुरुष एकवचन में जुहोमि रूप बनता है।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥4॥

पदपाठः - **समानी। वः आऽकूतिः। समाना। हृदयानि। वः॥ समानम्।**
अस्तु। वः। मनः। यथा। वः। सुऽसह। असति॥

अन्वय- वः आकूतिः समानी, वः हृदयानि समानाः, वः मनः समानम् अस्तु यथा वः सुसह असति।

व्याख्या- तुम सबके संकल्प एक समान हों, तुम्हारे हृदय एक समान हों, और मन एक समान हों, जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्ण रूप से संगठित हों।

सरलार्थ- (हे ऋत्विक् यजमान) हमारा अभिप्राय समान हो, तुम्हारा अन्तःकरण समान हों, तुम्हारा मन समान हों। तुम्हारा मेल शोभनीय हों (यही प्रार्थना है)।

व्याकरण-

- आकूतिः- आपूर्वक कृ-धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- समाना- समानानि इसका वैदिक रूप है।
- असति- अस्-धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

835. सञ्ज्ञान सूक्त का ऋषि, छन्द, और देवता क्या है?

836. वृषन् का क्या अर्थ है?

837. युवसे यह रूप कैसे सिद्ध होता है?

838. भर यह रूप कैसे सिद्ध होता है?

839. वदध्वम् यह किस लकार का रूप है?

840. समानी में क्या प्रत्यय है?

841. वः का क्या अर्थ है?

842. आकूतिः का क्या अर्थ है?

843. असति यह रूप किस धातु का है?

844. असति का लौकिक रूप क्या है?

पाठ का सार

8.6 संज्ञानसूक्त का सार

सभी इच्छाओं के पूरयिता अग्नि देव को उद्देश्य करके इस प्रकृत संज्ञान सूक्त में प्रार्थना की गयी है कि- सबका अभीष्ट प्रदाता जो अग्निदेव सब प्राणी समूह का सम्यक मेल करवाता है। और पृथिवी में अर्थात् वेदी में जो अग्निदेव प्रज्वालित होते हैं। वैसे अग्निदेव हम सबके लिए धन प्रदान करें।

एक साथ स्तोतृगण के प्रति कहा जाता है कि - आप सब के साथ मिलकर चलें, मिलकर बोलें। आपके मनमें समान समय में ही ज्ञान प्राप्त हों। जैसे प्राचीन काल में ज्ञान में समान होकर देव यज्ञभाग को स्वीकार करते थे, वैसे ही आप सब भी एकमत होकर धन को स्वीकार करो।

और सभी स्तोताओं की स्तुति एक विधा ही हों। उनकी प्राप्ति भी एक ही हो। आपकी समान स्तुति मेरे द्वारा अभिमन्त्रित है। और आपकी समान हवि से मुझे आहूत किया जाए।

और अन्त में यजमानों को उद्देश्य करके कहा जाता है कि - आपका सङ्कल्प समान हों। आपका हृदय समान हों। तथा मन भी समान हो। और जिससे आपका सहभाव शोभनिय हो यह प्रार्थना है।

पाठान्त प्रश्न

(सूर्यसूक्त)

845. सं समिद्युवसे.. इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो?धातु।

846. सूर्य के अश्व स्वरूप की समन्त्र व्याख्या करो।

847. सूर्य स्वरूप की समन्त्र व्याख्या करो।

848. अद्या देवा उदिता... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

849. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

(संज्ञानसूक्त)

850. संज्ञान सूक्त का सार लिखो।

851. संगच्छध्वम्.. इस मन्त्र को पूरा करके व्याख्या करो।

852. समानो मन्त्रः समितिः... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या लिखो।

853. समानी व आकूतिः... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरभाग- (सूर्यसूक्त।)

854. कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सूर्य देवता।

855. आश्चर्यकर।

856. आ उपसर्ग पूर्वक प्रा धातु से लुङ् के प्रथमपुरुष एकवचन में।

857. स्था धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर।

858. कल्याण।

859. भद्र हरित चित्र यह अनुमाद्यास नमन करेंगे।

860. इण्गतौ धातु से तन्प्रत्यय से एत सिद्ध होने पर एत पूर्वक गम्-धातु से ड्वप्रत्यय करने पर।

861. अनुपूर्वक मद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर।

862. देव्यु-धातु से क्यच् और शतृ के प्रथमाबहुवचन में।

863. इण्धातुः।

उत्तरभाग- (सूर्यसूक्त॥)

864. आदित्य।

865. सर्व।

866. सप्तम्यर्थ में।

867. अधिकरणार्थ में।

868. ङीप्प्रत्यय।

869. युज्-धातु से आत्मनेपदी लुङ् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन में।

870. रसहरणशील।

871. पाधातु से असुन्प्रत्यय करने पर।

टिप्पणी

872. निपातस्य च।

873. मम्ह् अथवा मह् धातु से लिट् मूलक लोट् लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में।

उत्तरभाग- (संज्ञानसूक्त॥)

874. ऋषि- आङ्गिरा। छन्द- 1, 2, 4 अनुष्टुप, 3 त्रिष्टुप्। देवता- 1 अग्नि, 2, 3, 4 संज्ञान।

875. कामों का वर्षित।

876. यु-धातु से लट् लकार के आत्मनेपद के मध्यमपुरुष एकवचन में युवसे रूप सिद्ध होता है।

877. भृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन भर यह रूप बनता है।

878. लोट्लकार में।

879. ङीप्प्रत्यय।

880. तुम्हारा।

881. आपूर्वक कु-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर।

882. अस्-धातु से।

883. अस्ति।

अठवाँ पाठ समाप्त